International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 217-219

भास्करमत में मुक्ति

डॉ0 ब्रह्मदेव

अतिथि प्रवक्ता, ई.सी.सी, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन की विशेषता यह है कि उसके सम्प्रदाय अपने स्वरूप और मान्यताओं में भिन्नता रखते हुए भी एक ऐसी स्थिति की अवधारणा में एक मत हैं जो अपरिछिन्न है, शाश्वत है, और दुःखाभाव रूप है। यही 'मोक्ष' है, मोक्ष का अर्थ ही है– सांसारिक बन्धनों और तज्जन्य कष्टों से जीव की विनिर्मुक्ति। व्यक्ति भौतिक जीवन की विभीषिकाओं और अपूर्णताओं से त्रस्त और असन्तुष्ट होकर ही अपनी संतुष्टि भौतिक सीमाओं से परे खोजने का यत्न करता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को सांसारिक चेतना के अत्यन्त हीन और स्थूल स्तर से आध्यात्मिक चेतना के सत्य–स्फूर्त, चिन्मय स्तर तक उठाने का श्रेय साध्य के आकर्षण और आश्वासन का ही होता है। दुःख से सर्वथा रहित, आत्मावस्थिति रूप मोक्ष की इस कल्पना में 'वेदान्त' ने 'आनन्द' तत्त्व और संयुक्त कर दिया। इस प्रकार मोक्ष केवल दुःखाभावरूप न रहकर निरतिशय सुखस्वरूप हो गया।

भास्कर मत में अविद्या कर्मोपाधि से मुक्त हो उपाधिकृत भेद–भावना के दूर होने पर जीव का परमात्मा में लीन हो जाना, ब्रह्म में अभेद रूप अवस्थित हो जाना ही 'मोक्ष' है।[1]

मोक्ष पर आगे विचार करने से पहले बन्ध पर विचार कर लेना समीचीन होगा क्योंकि यहाँ कई प्रश्न उपस्थित होता है– मोक्ष किसका होता है, मोक्ष की आवश्यकता तब होगी जब जीव बन्धन में रह रहा होगा फिर यह बन्ध क्या है, जीव कैसे बन्धन में पड़ता है, फिर वह बन्ध से मुक्त कैसे होगा, क्या साधन हैं मुक्ति के आदि।

भास्कर एकमात्र सत्तत्त्व 'ब्रह्म' की सत्ता स्वीकार करते है। ब्रह्म ही जीव जड़ादि प्रप×च के रूप में स्वयं को परिणमित करता है। इस दृष्टि से जीव जड़ादि भी ब्रह्मात्मक हुए और ब्रह्मात्मक होने से सत्य और नित्य भी है। ब्रह्मात्मक होने पर भी जीव स्वयं ब्रह्म नहीं है अपितु ब्रह्म का अंश है, ब्रह्म अंशी है।[2] अंशभूत जीव अनादि काल से अविद्या से ग्रस्त है। ब्रह्म का अंश होने से जीवरूप सत्य है। भास्कर जीवभाव को सत्य मानते हुए उसे कर्ता भोक्ता भी स्वीकार करते हैं कर्ता जीव जो कि अनादि काल से अविद्या से ग्रस्त है, संसार में काम, क्रोध, लोभादि के कारण अनेक कर्म करता है और उन कर्मों के फलस्वरूप उनका फल जीव को प्राप्त होता है। कर्मानुसार फलभोग करने के लिए जीव को अनेकानेक जन्म लेने पड़ते हैं। इस प्रकार यह जन्म–मरण चक्र अनादिकाल से चला आ रहा है।[3] यही बन्धन है। यहाँ ध्यातव्य है कि भास्कर जीव भाव, कर्तृत्व, भोक्तृत्व सब सत्य मानते हैं किन्तु सत्य होते हुए भी औपाधिक ही है। हाँ विशेष बात है यह कि उपाधि भी सत्य है। अविद्योपाधि के कारण जीव में व्यपदिष्ट जन्म–मरण, विधि–निषेध आदि जीव के सहज धर्म नही है, ये शरीर सम्बन्ध के कारण जीव में व्यपदिष्ट होते हैं।

भास्कर मत में 'जीवस्य वस्तुभूतस्य देहादिष्वनात्मसु विपरीतज्ञानं ब्रह्मस्वरूपाप्रतिपत्तिश्च तदुभयं ग्रहणाग्रहणमविद्या' अर्थात् वस्तुभूत जीव का देहादि अनात्म पदार्थों में 'विपरीत ज्ञान' और 'ब्रह्मस्वरूप की अप्रतिपत्ति' अविद्या है।[4] अर्थात् जीव अनात्म देहादि को ही अपना स्वरूप मान लेता है और सुख–दुःखादि जो शरीर के धर्म हैं उनसे अपना सम्बन्ध जोड़कर कर्म करता है और कर्मबन्धन में फंसता चला जाता है। ब्रह्म का अंश जीव इन्हीं शरीरादि उपाधियों के कारण अपने अंशी को विस्मृत करने लगता है यही अविद्या है यही जीव के बन्धन का कारण है। अतः जीव को बन्धन से मुक्ति पाने के लिए अविद्या से निवृत्त होना पड़ेगा।

यह अविद्या निवृत्त होगी तत्त्वमसि आदि वाक्यों के श्रवणादि से जनित विद्या से 'सा तत्त्वमस्यादिवाक्यश्रवणजनितया विद्यया निवर्तते' अर्थात् मोक्ष का साधन विद्या या तत्त्वज्ञान है[5] और सम्यक्ज्ञान के उत्पन्न होने पर यावज्जीवन अभ्यास अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन का यावज्जीवन अभ्यास करना चाहिए जिससे अज्ञान संशय, विपर्यय का निवर्तक 'आत्मज्ञान' उत्पन्न होता है यही परिपक्व होकर अपवर्गश्रम होता है।[6]

भास्कराचार्य का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है 'ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद' भास्कर का शंकर से संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण मतभेद इसी बिन्दु पर है। शंकर के मोक्ष के संप्रत्यय में कर्म का कोई स्थान नहीं है। शंकर के इस सिद्धान्त का आधार संभवतः उनके द्वारा स्वीकृत जीव आभासवाद या विवर्तवाद है। शंकर के अनुसार मनुष्य के लिए कर्म आवश्यक नही हैं केवल ज्ञान या शुद्ध ज्ञान ही मोक्ष है। जबकि भास्कर स्पष्ट रूप से कर्म की आवश्यकता पर बले देते है। भास्कर के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक आश्रम में कर्म करना चाहिए वह कभी भी इस अवस्था में नहीं पहुँच सकता जहाँ वह शास्त्रोक्त कर्म के बन्धन से ऊपर उठ जाता हो। भास्कर के अनुसार 'ज्ञानकर्मसमुच्चय' से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। भास्कर के अनुसार सूत्रकार को भी यही अभिप्रेत है।[7] 'सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्वत्' (वे.सू. 3/4/26)। अर्थात् विद्या सब आश्रम कर्मों की अपेक्षा करती है। इस सूत्र द्वारा सूत्रकार कर्म की अवश्यकर्तव्यता ही बताते हैं। भास्कर अपने सिद्धान्त की पुष्टता के लिए श्रुति प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं 'तमेतंवेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन' (वृ. 4/4/22) (उस आत्मा को ब्राह्मण वेद के नित्य स्वाध्याय यज्ञ दान और निष्काम तप से जानने की इच्छा रखते है) भास्कर के अनुसार इस श्रुति में ज्ञान के प्रति अपवर्गसिद्धि में यज्ञादि का तृतीया विभक्ति के द्वारा अंग रूप से प्रयाजादि के समान विधान किया गया है। ज्ञान की स्वरूपोत्पत्ति में कर्म व्यावर्तक नही होता। श्रवण मनन आदि उसके उत्पत्ति कारक है।[8] जैसे विद्वानों को अपवर्ग की प्राप्ति के लिए शमादि, यावज्जीवन अनुवर्तित होते है वैसे ही आश्रमकर्म भी होते हैं, अतः इनका परित्याग नही होता। कर्म का परिज्ञान न होने पर विद्या का किससे समुच्चय है किससे नही यह नही बताया जा सकेगा किन्तु कर्मज्ञान होने पर 'काम्य और निषिद्ध कर्म' हेय है तथा नित्य कर्मों के साथ किस विद्या का समुच्चय है यह बताया जा सकेगा।[9] भास्कर मत में 'ज्ञानी' भी कर्म की अनिवार्यता से ऊपर नहीं उठ सकता उसे भी शास्त्र विहित कर्म करना चाहिए। 'अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात्' (वे.सू. 4/1/16) की व्याख्या करते हुए भास्कर कहते है 'विदुषाप्यनिग्होत्रादि कर्तव्यमुक्तमेतत्वं अर्थात् विद्वान को भी अग्निहोत्रादि करना चाहिए। सूत्रस्थ एव का तात्पर्य है

समुचित ज्ञान और कर्म से अविद्यानिवृत्ति के द्वारा अपवर्ग व्यक्त होता है। इनमें से किसी एक के द्वारा नही। अतः जीवन पर्यन्त आश्रम विहत कर्म करना चाहिए।[10] यहाँ प्रश्न उठता है कि कर्म राग ही तो मनुष्य के बन्ध और पुनर्जन्म का कारण है फिर कर्म क्यों करें। इस विषय में भास्कर कहते है– सभी कर्म या शास्त्रोक्त कर्म मनुष्य को नहीं बाँधते शास्त्र विहित कर्म धर्म की कोटि में आते है जैसे स्वदारागमन धर्म है यह शास्त्रविहित है एवं परदारागमन से अधर्म होता है यह शास्त्र द्वारा निषिद्ध है। इस प्रकार विषय विषयक अशास्त्रोक्त कर्म राग ही बन्धन का कारण है।[11]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भास्कर ज्ञानकर्मसमुच्चय से ही मोक्ष स्वीकार करते हैं। मनुष्य शास्त्रविहित कर्म करता हुआ बार–बार शास्त्रों के श्रवण उनके मनन निदिध्यासन का यावज्जीवन अभ्यास करता रहता है। यह अभ्यास कई जन्मों तक भी चल सकता है। यावज्जीवन या अनेक जन्मों के निरन्तर अभ्यास करते हुए पवित्र आसन में बैठकर परमात्मा में चित्त लगाते रहने पर उपाधिकृत भेद धीरे–धीरे दूर होता जाता है।[12] भास्कर के अनुसार, अज्ञान का निवर्तक आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। मोक्ष प्राप्ति तक यावज्जीवन अभ्यास इसलिए आवश्यक है क्योंकि अभ्यास रोक देने पर शरीरेन्द्रिय उपाधियों के रहने पर जीव पुनः फिर से कर्म संस्कारों में उलझ सकता है। ब्रह्मज्ञान होने पर पूर्वजन्मों के संचित कर्म और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते है फिर प्रारब्ध कर्म शेष रहने तक शरीर रहता है एवं उनके कर्मफल पूर्ण हो जाने पर शरीर पात हो जाता है फिर पुनर्जन्म नही होता अर्थात् अविद्याजाल को काटकर जीव ब्रह्म एकत्व को प्राप्त हो जाता है।[13]

भास्कराचार्य मुक्ति के पश्चात् जीव का ब्रह्म में एकाकार होना स्वीकार करते है। भास्कर के अनुसार सूत्रकार को यही अभिप्रेत है। 'अविभागेन दृष्टत्वात्' में सूत्रकार यही सिद्ध करते है।[14] इसी सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भास्कर कहते है। 'अविभागेनेति। यथा च भग्ने घटे घटाकाशो महाकाश एव भवति दृष्टत्वादेवमपात्रापीति'। अर्थात् जैसे घट के भग्न हो जाने पर घटाकाश महाकाश ही हो जाता है। यही स्वाभाविक भी है क्योंकि ब्रह्म व जीव में भेद तो औपाधिक ही है स्वाभाविक रूप में तो अभेद ही है। श्रुति प्रमाण से भी भास्कर यही सिद्ध करते हैं। 'तत्त्वमसि (छा. 6/8/7) अहं ब्रह्मास्मि (वृ. 1/4/10) यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेविज्ञानतः आत्माभवति (क. 4/15) जैसे शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध जल वैसा ही हो जाता है वैसे ही गौतम विज्ञानी मुनि का भी आत्मा भी हो जाता है।[15]

आचार्य भास्कर शंकर की तरह जीवन्मुक्ति की स्थिति स्वीकार नहीं करते है। भास्कर मत में आत्यन्तिकी मुक्ति शरीर पात के अनन्तर ही संभव है।, इस विषय में भास्कर श्रुति प्रमाण भी प्रस्तुत करते है। तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये' (छा. 6/14/2) (अर्थात् उस विद्वान के मोक्ष में उतना ही विलम्ब है जब तक वह देह के बन्धन से मुक्त नहीं हो जाता। उसके अनन्तर वह सत्सम्पन्न हो जाता है)। भास्कर के जीवन्मुक्ति न मानने के पीछे संभवतः भास्कर का ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद का स्वीकरण है। ज्ञानकमुच्चयवाद के अनुसार ज्ञान के साथ–साथ कर्म भी मनुष्य के लिए आवश्यक है किसी भी आश्रम में ऐसी स्थिति नहीं आ सकती जब मनुष्य शास्त्रोक्त कर्म से ऊपर उठ जाए इस प्रकार शरीर रहने तक शास्त्रोक्त कर्म करते रहना होगा। शरीरेन्द्रिय उपाधियों के कारण ही भेदज्ञान होता है इस भेदज्ञान की निवृत्ति के लिए ही यावज्जीवन अभ्यासरत रहना पड़ता है किसी भी समय श्रवणादि अभ्यास से विरत होने पर पुनः विपरीत क्रम से कर्मबन्धन की और जीव का प्रवाह हो सकता इस प्रकार शरीर रहने पर थोड़ा द्वैतभान तो बना ही रहता है और शरीर से कर्म तो करना ही होगा इस प्रकार जीवन्मुक्ति की स्थिति भास्कर को स्वीकार्य नही है।

भास्कर मुक्ति में दो प्रकार की स्थिति स्वीकार करते है या यूँ कहें कि दो प्रकार की मुक्ति स्वीकार करते हैं। प्रथम सद्यः मुक्ति द्वितीय क्रम मुक्ति। यहाँ ध्यातव्य है कि भास्कर जीवन्मुक्ति की अवस्था को स्वीकार नहीं करते परन्तु उनके मत में राग द्वेष मोह मदादि् से विमुक्ति भी एक प्रकार की मुक्ति है किन्तु भास्कर आत्यन्तिकी मुक्ति शरीरपात के अनन्तर ही स्वीकार करते है।[16] शरीरपात होने पर भास्कर सद्यः और क्रम मुक्ति स्वीकार करते है 'द्विधामुक्तिः सद्य एवं मुक्तिः क्रम मुक्तिश्चेति।'' ये साक्षात्ब्रह्मैवोपासते सद्य एवमुच्चेरन। उतरे तु हिरण्यगर्भ प्राप्य शुद्धान्तःकरणाः तत्रैव ज्ञानप्रकर्षमासाद्य छाया तपयोरिव ब्रह्मलोके इति विविक्त बोधोत्पत्तिसंकीर्तनात् तेन सह मुच्येरन्। साक्षात् परब्रह्म की उपासना करने वाले को सद्यः मुक्ति और उससे इतर अन्य (कार्यब्रह्म की उपासना करने वाले) तो हिरण्यगर्भ को प्राप्त कर शुद्ध अन्तःकरण वाले होकर वही ज्ञान का प्रकर्ष प्राप्त कर विविधोत्पत्ति का संकीर्तन होने से मुक्त हो जाते है। अर्थात् कारण ब्रह्म या साक्षात् परब्रह्म की उपासना करने पर जीव मुक्ति में सीधे ब्रह्म से एकाकार हो जाता है और कार्यब्रह्म की उपासना करने वाले क्रम मुक्ति के द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। भास्कर संभवतः जिसे कार्यब्रह्म की उपासना कहते हैं वह विभिन्न देवी देवताओं की उपासना है इनकी उपासना करके जीव विभिन्न देवलोकों प्राप्त कर वहीं साधना सम्पूर्ण कर ब्रह्मलोक की प्राप्ति कर लेता है।

संदर्भ

1. (क) उपाधिकृतभेदस्तु सोऽभेदभावनायापनीयते। अग्निसम्पर्केणेव कनकगतमलस्य – भा.भा. 4/1/3
   (ख) अभेदः स्वाभाविकः ततो हेतोरनन्तेन परमात्मना विधूवाविद्याजालमेकत्वं प्रतिपश्चते– भा.भा. 3/2/26
2. (क) सर्वज्ञं सर्वशक्ति तदङ्गास्तु जीवा.... भा.भा. 2.2.40
   (ख) तदंशो जीवोस्ति– भा.भा. 2.3.43
3. अविद्याकर्मपूर्वप्रज्ञावशेन सुखदुःखभोगार्थं पूर्वदेहं विहाय देहान्तरं प्रतिपद्यते।
   –भा.भा. 3/1/1
4. 'जीवस्य वस्तुभूतस्य देहादिष्वनात्मसु विपरीतज्ञानं ब्रह्मस्वरूपाप्रतिपत्तिश्च तदुभयं ग्रहणाग्रहणमविद्या'– भा.भा. 1/1/4
5. 1 दृष्टव्य–भा.भा. 1/1/4
6. श्रवणमननयोरसकृत्क्रियमाणयोरज्ञानसंशयविपर्ययनिवर्तकमात्मज्ञान मुत्पद्यते–
   भा.भा. 4/1/1
7. अत्र हि ज्ञानकर्मसमुच्चयान्मोक्षप्राप्ति सूत्रकारस्याभिप्रेता। भा.भा. 1/1/1
8. सर्वेष्वाश्रमवत्सु अपेक्षा सा सर्वापेक्षा..... न च ज्ञानस्वरूपोत्पत्तौ कर्म व्याप्रियते। श्रवणमननादि तदुत्पत्तिकारकम्। भा.भा. 3/4/26
9. कर्मणि चापरिज्ञाते विद्यायाः केन समुच्चयः केन नेति विभागो न शक्यते वदितुं।
   –भा.भा. 1/1/1
10. समुच्चिताभ्यामेव ज्ञानकर्मभ्यामविद्यानिवृत्तिद्वारेणापवर्गोब्यज्यते।..... अतो यावज्जीवमाश्रमविहितं कर्म कर्तव्यम्। भा.भा. 4/1/16
11. यत्तावदुक्तं रागो बन्धहेतुरिति तदयुक्तम्। शास्त्रादयं विभागोगम्यते। यथा स्वदारागमनं धर्माय परदारागमनमधर्माय तथा विषयविषयोरागो बन्धहेतुर्निरतिशयानन्द– ब्रह्मविषयो मुक्तये।
12. (क)श्रवणमननयोरसकृत्क्रियमाणयोरज्ञानसंशयविपर्ययनिवर्त्तकमात्म विषयकत्वज्ञानमुत्पद्यते
   –भा.भा. 4/1/1

(ख) उपाधिकृतभेदस्तु सोऽभेदभावनयापनीयते।– भा.भा. 4/1/3

13. तदधिगमे ज्ञानलाभे सत्युत्तरपूर्वयोरघयोः पापयोरश्लेषविनाशौ पूर्वात्पन्नस्य
जन्मान्तरसंचितस्य। भा.भा. 4/1/13
14. दृष्टव्य– भा.भा. 4/4/4
15. दृष्टव्य– भा.भा. 4/4/4
16. (क) द्विधा मुक्तिः सद्य एव मुक्तिः क्रममुक्तिश्चेति। भा.भा. 4/3/14

(ख) द्विधामुक्तिर्जीवदवस्थायां रागद्वेषमोहैः तदंगैश्च मदादिभिर्विमुक्तिः पातोत्तरकालमात्यन्तिकीति। भा.भा. 4/1/14